Chapter-1

प्रथम अध्याय

सियारामशरण गुप्त : जीवन और व्यक्तित्व

प्रस्तावना

जन्म

पारिवारिक जीवन

साहित्य सृजन की प्रेरणा

उपलब्धि और प्रसिद्धि

उपसंहार ।

प्रस्तावना :

आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्य में सियारामशरणजी का विशिष्ट स्थान है। वे द्विवेदी युगीन काव्य चेतना के उच्च कोटि के कवि हैं। तत्कालीन कवियों की रचनाओं पर युग चिंतक महात्मा गांधी के विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा है। "इन समस्त कवियों में सियारामशरणजी ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने गांधीदर्शन को अपनाने में बाहर भीतर का साम्य रखा है। गांधीवादी विचारधारा का जितना प्रभाव सियारामशरणजी की लेखनी पर है, उनके व्यक्तित्व पर उससे किसी भी रूप में कम नहीं है।"[१] इससे पूर्व कि हम सियारामशरणजी की कृतियों का सांगोपांग विवेचन करें, हमारे लिये उस कवि के जीवन एवं व्यक्तित्व के बारे में जानकारी करना अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में हम उनके जीवन एवं व्यक्तित्व पर ही विचार करेंगे।

जन्म :

स्व. श्री. सियारामशरण गुप्त का जन्म भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा सं. १९५२ वि. को उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले के चिरगाँव नामक स्थान में

---

१. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : डॅा. ललित शुक्ल - पृ. ३५५

हुआ था। उनके पिता का नाम श्री. रामचरण गुप्त था, जिनके पाँच पुत्र थे – महारामदास, राम किशोरजी, मैथिलीशरण, सियारामशरण तथा श्री चारुशीलाशरण। इनमें से सियारामशरणजी को छोडकर शेष सभी गुप्त बंधुओं के परिवार संतान संपन्न हैं। दुर्भाग्यवश सियारामशरणजी की एक भी संतान जीवित नहीं रही।

वंश परिचय :

सियारामशरणजी के पूर्वज बुंदेल खंड की प्राचीन नगरी पद्मावती के निवासी थे और वहाँ से वे चिरगाँव आकर स्थायी हो गये थे। इस प्रकार उनकी चार पीढ़ियाँ चिरगांव में रहती आई हैं। उनका परिवार 'गहोई' नामक वैश्य शाखा के अंतर्गत आता है। स्वयं सियारामशरणजी का मत है कि "गहोई गृहपति का अपभ्रंश है और इन गहोई वैश्यों का प्रदेश बुंदेल खण्ड है।"[१] ये 'गहोई' वैश्य 'कनकने' उपनाम से प्रख्यात थे। डॉ. कमलाकांत पाठक ने 'कनकने' की उत्पत्ति राजस्थान के 'कणकणा' शब्द से मानी है, किंतु डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र के विचारानुसार "कनकने शब्द वास्तव में प्रादेशिक है और 'गहोई' वैश्य परंपरा के लिए रूढ़ हो गया है।"[२]

सियारामशरणजी के पिताजी श्री रामचरणजी संपत्ति संपन्न होने पर भी स्वभाव से अत्यंत सरल एवं उदार प्रकृति के व्यक्ति थे। ईश्वर में उनकी अटूट आस्था थी तथा उनका अधिकांश समय भगवद्भक्ति में ही व्यतीत होता था। सियारामशरणजी पर पिता के इन आस्तिक संस्कारों का गहरा प्रभाव पड़ा और उनकी ईश्वर पर अपार आस्था हो गई। संभवत: ईश्वर के प्रति उनकी अटूट आस्था और भक्तिभावना ने ही उन्हें दैहिक कष्ट सहन की अपार शक्ति प्रदान की थी। उनके यहाँ सब प्रकार के गुणज्ञों को उचित सम्मान प्राप्त होता था। "कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ, साधु-महात्मा तथा लावनी गानेवाले सभी उनका आतिथ्य ग्रहण करते थे।"[३] उनके मन में सबके प्रति समान

---

१. सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना : डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र – पृ. ९
२. सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना : डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र – पृ. १०
३. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र – पृ. ४

रूप से सम्मान की भावना रहती थी। परिवार के वैष्णव संस्कारों की पल्लवित पुष्पित वाटिका का ब्यौरा मुंशी अजमेरीजी ने इस प्रकार दिया है -"उनका अधिक समय भजन पूजन में ही बीतता था। आध्यात्म रामायण और रामचरित मानस का साप्ताहिक पाठ किया करते थे। प्रति मंगलवार को दोनों पाठ समाप्त होते थे और उस दिन एक ब्राह्मण को भोजन कराया जाता था। प्रतिदिन संध्या समय गाँव के पण्डितों की मण्डली उनके पास जुड़ती थी और अनेक विषयों पर वार्ता होती। दाऊजू वार्ता करते, सुनते और हजारा हजार मणियोंकी माला जपते रहते थे। वे स्वयं गाते बजाते नहीं थे, पर संगीत सुनने और पद बनाने का बड़ा शौक था। जो धुन उन्हें पसंद आ जाती, उसी पर पद बना लेते थे। ....वे धार्मिक विचारों में बड़े कड़े थे। बड़ी पवित्रता से रहते थे।फलों के सिवा मार्ग चली कोई चीज नहीं खाते थे। जब हाकिम हुक्कामों से, अंग्रेज अफसरों से हाथ मिलाकर आते थे, तब स्नान होता था और वे सब कपड़े धोए जाते थे, जिन्हें वे पहनते थे। उनका जीवन आनंदमय था। वास्तव में एक कवि के शब्दों में, उनका जीवन धन्य ही था। वे बड़े सच्चरित्र थे, कोई दुर्व्यसन छू तक नहीं गया था।"[१] निःसंदेह ही सियारामशरणजी भी इस पवित्र धार्मिक वातावरण से प्रभावित अवश्य हुए होंगे। वस्तुतः कवि को सहिष्णुता एवं चारित्रिक पवित्रता का गुण पिता से ही विरासत में मिला।

श्री रामचरणजी धार्मिक व्यक्ति होने के साथ ही साथ स्वभाव से अत्यंत उदार एवं रईस मिजाज के आदमी थे। उन्हें अपने स्वजनों की रुचि अरुचि का भी विशेष ध्यान रहता था। उन्होंने न केवल आर्थिक संकट से घिरे हुए बहुत से व्यक्तियों की आर्थिक सहायता पहुँचाई, बल्कि निर्धन व्यक्तियों को भी ऋणमुक्त कर दिया। दुर्भाग्यवश कवि को पिता का वात्सल्य अल्पकालीन ही प्राप्त हो सका। जब वे केवल आठ ही वर्ष के थे, उस समय उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। कवि पर पिता के संस्कारों का गहरा प्रभाव पड़ा और यही प्रभाव उनके व्यक्तित्व निर्माण में भी सहायक

---

१. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त : अभिनंदन ग्रंथ : सं. ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ' - पृ. १८ से उद्धृत

सिध्द हुआ। इसके दो वर्ष बाद ही माता की भी मृत्यु हो गई।

<u>बाल्यकाल</u> :

अग्रज मैथिलीशरण गुप्त के नाम से साम्य की दृष्टि से ही संभवत: उनके अनुज का नाम सियारामशरण गुप्त रखा गया था। कवि ने अपने नाम को लेकर कुछ संस्मरण भी लिखे हैं। एक बार वे किसी छपी हुई कविता के नीचे मैथिलीशरण गुप्त का नाम देखकर बहुत प्रसन्न हुए और सोचने लगे कि 'शरणगुप्त' सियारामशरण के नाम में भी तो लगा हुआ है। उन्होंने स्वयं लिखा है -"यदि कुछ दे दिलाकर भी मेरी कविता उस समय किसी पत्र में छप सकती तो अपने लिये इसमें मुझे कोई हिचक न होती।"[1] इस घटना के पश्चात् "सियारामशरणजी को किसी पत्र में अपना नाम प्रकाशित देखने की तीव्र इच्छा हुई और निर्धारित पाठ्य पुस्तक में कहीं अपना नाम छपा हुआ न पाकर कवि को दुःख हुआ।"[2] जब कभी रहीम बख्श नाम का उनका सहपाठी 'काकी महिमा न घटी, पर घर गये रहीम' कविता में 'रहीम' शब्द पर जोर देकर यह जताने की कोशिश करता कि इस कविता में मेरा नाम छपा है और छिमाधर नाम का सहपाठी "जाके हिरदे है छमा ताके हिरदे आप" कविता में 'छिमा' शब्द पर जोर देकर पुलकित होता, उस समय सियारामशरणजी भी यह कहने से नहीं चूकते थे कि-"सियाराममय सब जग जानी" रामायण की महिमा अपार है। उनका नाम अपार महिमावाले ग्रंथ में छप गया है। उनकी इस दलील से उनके दोनों सहपाठी चुप हो जाते। इस प्रकार बाल्यकाल में रामायण में अपना नाम 'सियाराम' देखकर कवि को आह्लाद हुआ था, प्रौढ़ होने पर कवि समस्त विश्व को 'सियाराम मय' समझने लगा। उन्होंने अपने नाम की सार्थकता प्रमाणित कर दी। "सब नारी नरों को सीताराम मय स्वरुप में देखकर वे सब की भक्ति करते हैं। उनकी कविता में जो भी रस होगा, वह इसी गुण का परिपाक है।"[3]

---

१. झूठ-सच 'बाल्यस्मृति' लेख से पृ. ५५

२. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र - पृ. २

३. प्रताप - सियारामशरण अंक, ४ सितम्बर १९५२.

सियारामशरणजी आरंभ से ही बड़े आज्ञाकारी, सेवापरायण एवं संवेदनशील थे। उनके शैशवकाल का एक प्रसंग अंकित करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है -"उनके पैर में एक भयानक फोड़ा हुआ था। जिस दिन उसमें चीरा लगाये जाने की बात थी, उसी दिन वह अपने आप फूट गया। इतनी पीप निकली कि मानो उनका सारा शरीर ही निचुड गया। संभव है, उसीके कारण उनकी बाढ़ मारी गयी हो। ऊँचाई में वे मेरी अपेक्षा बहुत छोटे रह गये।....जान पड़ता है उस समय जिस फोड़े ने उनका पैर पकड़ा था उसकी पीड़ा को वे आज भी अपने हृदय में आश्रय दिये जा रहे हैं।"[1] प्रारंभ में कवि के संवेदशील हृदय पर इस पीड़ा का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

सामान्यतः खेलकूद की ओर बच्चों की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। किंतु सियारामशरणजी का इस ओर तनिक भी झुकाव नहीं रहा। "बालक सियाराम-शरण एक नटखट खिलाड़ी बनकर कभी क्रीड़ा स्थल पर खेलने नहीं गए।"[2] वस्तुतः उनमें बाल सुलभ चपलता का अभाव सा था। बचपन से ही उनमें एक प्रकार का संकोच पाया जाता है जो आगे चलकर उनकी रचनाओं में भी मुखरित हुआ है। उनके संकोचशील स्वभाव के विषय में उनके अग्रज ने लिखा है -"खेलकूद की ओर बच्चों की स्वाभावित प्रवृत्ति होती है, परंतु अपने अनुज का यह भाग मैंने मानों हथिया लिया था। उनका कोई उपद्रव स्मरणीय नहीं। चोट चपेट उनका काम न था। जैनेन्द्रजी के कथनानुसार उनकी यह न्यूनता उनकी रचनाओं में भी बनी है। वे आघात नहीं कर सकते।"[3] वस्तुतः उनका स्वभाव ही ऐसा नहीं था कि वे बाल सुलभ चंचलता को संभाल पाते। उनकी अस्वस्थता भी उनके खेलकूद में अवश्य बाधक सिध्द हुई होगी। किंतु यह उल्लेखनीय है कि जहाँ अस्वस्थता के कारण कवि खेलकूद से वंचित रहा वहीं इसी अस्वस्थता के कारण संभवतः कवि की प्रकृति अंतर्मुखी हो गयी। मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा भी है "संभव है, आरंभ से ही अंतर्मुखी प्रवृत्ति ने

---

१. सियारामशरण गुप्त : 'अनुज' लेख से सं. डॅा. नगेन्द्र - पृ. ४
२. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : डॅा. ललित शुक्ल - पृ. २
३. सियारामशरण गुप्त : अनुज लेख से सं. डॅा. नगेन्द्र - पृ. ४

उन्हें बाह्य विषयों से विमुख बना दिया हो।"[१] इस प्रकार बचपन से ही सियारामशरणजी में आक्रोश, उत्तेजना या संहारक शक्ति का अभाव सा रहा है। बालसुलभ चपलता के अभाव में जहाँ कवि स्वभाव से संकोचशील एवं अंतर्मुखी हो गया, वहीं शारीरिक स्फूर्ति के अभाव में उसकी कल्पनाशक्ति विशेष रुप से मुखरित हो उठी थी। एक बार मिट्टी के बने हुए पोले हाथी के भीतर चींटी डालकर सियारामशरणजी सोचने लगे कि यदि चींटी की आत्मा निकाल कर हाथी के पेट में चली जाय तो हाथी जीवित हो उठे। इस विषय में अपनी कल्पना को उजागर करते हुए वे लिखते हैं-"अपने इस नये आविष्कार से मेरा बाल हृदय एक साथ उछल उठा कि जब यह छोटा सा हाथी अपनी छोटी सी सूंढ हिलाता हुआ इस आँगने में डोलने फिरने लगेगा तब सब कहीं कैसी धूम मच जाएगी, कितना बड़ा कौतुक होगा वह।"[२] "इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हैं जिनमें कवि का बाल्य जीवन आरंभ से ही कल्पना लोक में विचरण करता हुआ दृष्टिगत होता है।"[३]

सियारामशरणजी बाल्यकाल से ही साधु प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने अपने शैशवकाल में पिताजी से रामचरित मानस की नाम महिमा और 'नीलाम्बुजश्यामल कोमलांगम्' आदि कुछ संस्कृत के श्लोक सीख लिये थे। इसके अतिरिक्त कवि को बचपन से ही एक बात की रट लगी हुई थी -"हम तो गुफा में बैठ कर तपस्या करेंगे।"[४] "एक बार वे घर की किसी अलमारी में तपस्या की मुद्रा में बैठ गये और साथी दरवाजे बंद करके चले गये। भाग्य से शीघ्र ही निकाल लिये गये अन्यथा तपस्या बहुत महँगी पड़ती। उन्होंने साधु की सी साधना का अभ्यास बाल्यकाल से ही आरंभ कर दिया था।"[५]

<u>शिक्षा और अध्ययन</u> :

सियारामशरणजी की प्रारंभिक शिक्षा चिरगाँव की प्राथमिक

---

१. सियारामशरण गुप्त : 'अनुज' लेख से सं. डॅा. नगेन्द्र - पृ. ५
२. झूठ-सच : बाल्यस्मृति लेख से - पृ. ५१-५२
३. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : डॅा. ललित शुक्ल - पृ. ३
४. अनुज लेख - पृ. ८
५. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॅा. शिवप्रसाद मिश्र-पृ. ९

पाठशाला में आरंभ हुई। वे प्रातः पाठशाला जाते थे और संध्या को घर लौटने के बाद पंडितजी से भी पढ़ते थे। वे गणित में कमजोर थे, किंतु भाषा एवं अन्य विषयों में वे निपुण थे। स्वयं कवि ने इस विषय में लिखा है, "मदरसे में कभी कभी चार हिसाबों में से पाँच तक मेरे गलत निकल आते थे। भाषा एवं दूसरे विषयों के कारण ही मैं वहाँ अपनी प्रतिष्ठा बनाये था।"[1] कवि की स्मरण शक्ति बहुत तीक्ष्ण थी। उन्होंने छः सात वर्ष की अल्पायु में ही संस्कृत के अनेक श्लोक कंठस्थ कर लिये थे।

कवि ने केवल प्राईमरी तक ही स्कूली शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में वे स्वाध्याय व्दारा ही ज्ञान अर्जित करते रहे। अपने स्कूली ज्ञान की ओर संकेत करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा भी है -"जब मैं पढ़ता था, उस समय गाँव में मिडिल स्कूल नहीं था, इसलिये यदि मुझे उसका प्रमाण पत्र नहीं मिल सका है, तो इसके लिये मुझे दोष नहीं दिया जा सकता, जितना ज्ञान मुझे मिल सका, उसीको अपना आधार मानकर एक दिन मैंने हाथ में लेखनी ली थी।"[2] प्राईमरी तक की स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत सियारामशरणजी के सामने अनेक कौटुम्बिक समस्याएँ उपस्थित हो गई। "झाँसी की दुकान का कामकाज बंद हो जाने के कारण सियारामशरणजी की देखभाल के लिये कोई विश्वसनीय व्यक्ति वहाँ न था। छात्रावास का भी अभाव था और कवि के अग्रज के झाँसी में न पढ़ सकने का उदाहरण भी लोगों के सम्मुख था। अतः सियारामशरणजी झाँसी में नही पढ़ सके। इस प्रकार कवि के अग्रज परोक्ष रुप में अपने को ही अनुज की शिक्षा लाभ में बाधक मानते हैं"[3]

प्राईमरी शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत कवि की रुचि साप्ताहिक और मासिक पत्रों की ओर विशेष रुप से रही। यौवनारम्भ में ही उन्हें श्वास रोग हो गया था, अतः स्वाध्याय में भी उनके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई। किंतु स्वस्थ होते ही वे पुनः अध्ययनरत हो जाया करते थे। अंग्रेजी सीखने में उन्हे अपने अनुज श्री चारुशिलाशरणजी से पर्याप्त सहयोग प्राप्त

---

१. झूठ-सच : बाल्यस्मृति लेख से - पृ. ५९

२. 'त्रिपथगा' श्रध्दांजलि - अंक -अगस्त, १९६३ ई. पृ. ६५-६६

३. 'अनुज'- निबंध : पृ. ४

हुआ। संभवत: कवि ने घर में प्राप्त बंगला पुस्तकों से सहायता अवश्य ली होगी। कवि के पिता के पास ईश्वरचंद्र विद्यासागर लिखित बालकोपयोगी कई पुस्तकें एक जिल्द में बंधी हुई थी। बंगला शब्दों के हिन्दी अर्थ या तो उनके बगल में या ऊपर पिताजी ने लिख रखे थे। लिपि सीख लेने पर उन्हीं पुस्तकों से उन्होंने बँगला पढ़नी आरंभ कर दी थी, शीघ्र ही बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय और रमेशचंद्र दत्त के उपन्यास भी उन्होंने पढ़ डाले।"[1] अभ्यास के उपरांत वे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं के पारायण में लग गये, इससे उनके बँगला साहित्य के ज्ञान में भी वृध्दि हुई। उन्होंने उर्दू सीखने का प्रयास भी किया, किंतु अचानक बीमार हो जाने से उर्दू का अध्ययन करने में असमर्थ रहे।

वस्तुत: गुप्तजी के सम्पूर्ण जीवन में पुस्तकों का विशेष महत्व रहा है। उनका मानना था -"जहाँ पुस्तके रहती हैं, वहीं स्वर्ग बन जाता है। हिन्दी, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी किसी में भी कोई प्रकाशित होते देर नहीं कि मंगाली गई। 'सृष्टि का क्रम विकास' बिलकुल नया विषय होने पर भी पुस्तक मंगा ली गई। अस्वस्थ होते हुए भी कवि ने उसे अवश्य पढ़ा होगा।"[2] अंग्रेजी और बँगला के अतिरिक्त उन्होंने विशाल संस्कृत साहित्य का भी स्वाध्याय व्दारा अध्ययन किया। वे कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर से विशेषरूप से प्रभावित हुए। "उनके लिखने की शैली अलंकृत भाषा की दृष्टि से गुरुदेव की अनुयायीनी है और उनके भाव बापू के अनुयायी हैं।"[3] वे नूतन विचारों के प्रति परमुखापेक्षिता से काम नहीं लेते। "फ्रायड के मनोविज्ञान के विषय में भी उन्होंने थोड़ा बहुत पढ़ा है और अपने संबंध में उसकी कुछ बातें मिलती हुई पाकर वे उससे प्रभावित हैं।"[4] इस प्रकार कवि ने स्वाध्याय व्दारा जहाँ विभिन्न भाषाओं का अध्ययन किया, वहीं स्वाध्याय से रवीन्द्र, कालिदास, फ्रायड एवं ईसा के विचारों का समुचित ज्ञान भी अर्जित किया। बापू की अध्ययनशीलता की सराहना करते हुए डॉ. मोतीचंद्र ने लिखा भी है -"बापू एक अध्ययनशील व्यक्ति है। उनका विश्वास है कि साहित्य और विज्ञान का

----

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : २५ अप्रैल ६५, श्री. चारुशीलाशरण गुप्त - पृ. २२
२. सियारामशरण गुप्त : 'बापू' सियारामशरणजी लेखसे-सं. डॉ. नगेन्द्र-पृ. २७-२८
३. सियारामशरण गुप्त : 'अनुजे' लेख से सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ. १४
४. -"- -"- -"- -"- - पृ. १३

ज्ञान आत्मतुष्टि का साधन है, बापू ने इसीलिये अँग्रेजी पढ़ी। मुझे अनेक ऐसे अवसर पड़े है, जब मैंने बापू को ऐसे विषयों को पढ़ते देखा है, जिनसे उनका सीधा संबंध नहीं।"[1] संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कवि का संपूर्ण जीवन सरस्वती की साधना में ही व्यतीत हुआ। उन्होंने विभिन्न धार्मिक पुस्तकों का पारायण किया। गीता का अनुवाद उनके स्वाध्याय का परिचायक है। डॉ. कमलाकांत पाठक ने कवि की इसी स्वाध्याय की प्रवृत्ति को अनुलक्ष कर लिखा है -"सियारामशरणजी ने यद्यपि थोड़ी ही शिक्षा पायी है, तो भी वे बुध्दिनिष्ठ व्यक्ति हैं और स्वाध्याय उनका मुख्य अध्यवसाय है।"[2]

<u>पारिवारिक जीवन</u> :

कवि का पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं रहा। उनका विवाह आठ वर्ष की अल्पावस्था में ही रईस देवकीनंदन की एकमात्र संतान केशरबाई के साथ हुआ था। केशरबाई गृहकार्य में निपुण थीं। कवि उन्हें पढ़ाना चाहते थे, किंतु पारिवारिक परंपराको ध्यान में रखते हुए वे स्वयं तो उन्हें पढ़ा नहीं सकते थे, अत: उन्हें पढ़ाने का कार्यभार उन्होंने अपने अनुज श्री चारूशिलाशरणजी को सौंप दिया था। विधि के क्रूर विधानवश कवि दाम्पत्य जीवन का सुखोपभोग अधिक समय तक न कर सका। क्षय की बीमारी से २० अक्टूबर १९२२ ई. को जाड़े की एक सर्द रात में श्रीमती केशरबाई का निधन हो गया। पत्नी के निधन के समय कवि की उम्र केवल छब्बीस वर्ष की थी। अत: यदि वे चाहते तो उनका पुनर्विवाह आसानी से हो सकता था; किंतु कवि ने एक पत्नीव्रती रहना ही श्रेयस्कर समझा। संभवत: पुनर्विवाह के प्रति उनकी असहमति पूर्व जन्म के संस्कारों तथा पति-पत्नी के चिरकालिक आत्मीय संबंध के प्रति विश्वास की भावना पर ही आधारित रही होगी। कदाचित इन पंक्तियों में वही भाव स्पष्ट है,

---

१. 'प्रताप': सियारामशरण अंक : डॉ. मोतीचंद्र - पृ. ७३

२. मैथिलीशरण गुप्त : 'व्यक्ति और काव्य' : डॉ. कमलाकांत पाठक - पृ. २५

"अनाद्यन्त वह प्रेम कहाँ से तुझे हुआ था प्राप्त ?
तेरा पता नहीं, पर वह है चिरकालिक असमाप्त।"[1]

विवाह के प्रति उनकी अनिच्छा को अनुलक्षकर उनके परिवारजनों ने भी उन्हें अधिक बाध्य नहीं किया। उनकी असहमति का कारण उनकी अस्वस्थता हरगिज नहीं थी। श्रीमती महादेवी वर्मा ने स्वयं इस विषय में लिखा है "मैंने तो विषाद की पंक्तियाँ पढ़कर यही माना है कि अपनी बाल संगिनी पत्नीको उन्होंने अपने हृदय का समस्त स्नेह ऐसी निष्ठा के साथ समर्पित किया था कि उसे लौटा देना दोनों लेने देने वाले का अपमान बन जाता।"[2] "पत्नीके आजीवन वियोग के साथ साथ कवि को एक एक करके कई संतानों का वियोग भी अपने पथराये नेत्रों से देखना पड़ा। प्रारंभ में उनके दो लड़कों का एक या दो वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया और उन्हीं दो बच्चों के संबंध में मैथिलीशरणजी की 'नक्षत्रनिपात' एवं 'मेरे आंगन का एक फूल' नामक कविताएं लिखी गयीं। इन दो बच्चों के पश्चात् उनकी एक और संतान डेढ़ दो वर्ष की आयु में ही दिवंगत हो गई और चौथे पुत्र पुरुषोत्तम का निधन तीन वर्ष की अवस्था में हुआ। कवि की अंतिम संतान उर्मिला नाम की पुत्री थी और बचपन में ही वह नेत्रहीन हो गई थी। वह केवल चार वर्ष तक ही जीवित रही।"[3] उर्मिला अपनी नानी के पास ही रहती थी। एक दिन सियारामशरणजी अचानक वहाँ पहुँचे। उनके पहुँचने पर उसे बहुत प्रसन्नता हुई और दुर्भाग्य से उसी दिन वह चल बसी। कवि ने 'हूक' नामक कविता में बेटी की इस अप्रत्याशित मृत्यु के दुःख की ही अभिव्यक्ति की है। यह अवश्य है कि जीवन के इस कठोर परीक्षाकाल में भी वे किंचित मात्र भी विचलित या निराश नहीं हुए। जीवन का विषाद अंतर्मुखी हो गया और वह काव्य रूप में ही बहिर्मुख हुआ। उनका व्यक्तिगत विषाद लोक का आनंद बन गया।

---

१. विषाद : पृ. २४
२. पथ के साथी : महादेवी वर्मा - पृ. ९२
३. सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना: - डॅा. दुर्गाशंकर मिश्र - पृ. १७

कवि का पारिवारिक वैभव सन् १९०० के पश्चात् नष्टप्राय हो गया था और "कोई तीस चालीस वर्ष तक उस संकट से जूझना पड़ा।"[1] वैसे सियारामशरणजी यदि चाहते तो उन्हें अपने लखपति श्वसुर से आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकती थी, किंतु स्वयं सियारामशरणजी एवं उनके परिवारजनों को यह बात रुचिकर प्रतीत नहीं हुई। श्री मैथिलीशरणजी के कथनानुसार -"उक्त आर्थिक संकट से मुक्ति पाने के लिये साहित्य प्रेस की स्थापना के विचार में सियारामशरणजी ही अधिक उत्साही हुए। एक क्राउन फोलियो ट्रेडिल लेकर ही कार्य आरंभ करने की उनकी योजना थी।[2] पर्याप्त विचार विमर्श के उपरांत किसी प्रकार पैसे की व्यवस्था कर प्रेस की स्थापना की गई, इससे जहाँ एक ओर कवि की कामना पूर्ण हुई, वहीं परिवार का आर्थिक संकट भी समाप्त हुआ।

इस प्रकार सियारामशरणजी के पारिवारिक जीवन पर दृष्टिपात करने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि का पारिवारिक जीवन अत्यंत ही कष्टमय एवं संवेदनशील रहा है। जीवन के कठोर परीक्षाकाल में भी वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने दारुण दुःख को सहते हुए अपूर्व संयम से काम लिया। उनकी इसी संयमशक्ति की सराहना करते हुए श्रीमती महादेवी वर्मा ने लिखा है "किशोर होते ही इन्हें पत्नी मिल गयी थी, और तरुणाई में श्वांस रोग प्राप्त हो गया था। थोड़े थोड़े समय के अंतर से दो बालक नहीं रहे, असमय ही पत्नी ने विदा ली पर भाभियाँ कहती हैं कि उन्होंने अद्भुत संयम से वह वियोग व्यथा झेली।"[3] पत्नीके निधनपर 'विषाद' की रचना कवि ने की।

वास्तव में सियारामशरणजी एक ऐसे विरले व्यक्ति थे जो आजीवन श्वांस जैसे दुर्धर रोग से जूझते हुए निरंतर गतिशील रहे। परिवारजनों के लिये उनका यह कष्ट असहय था, किंतु इस असाध्य रोग के सम्मुख उन्हें विवश हो जाना पड़ा। "कवि श्वांस रोग से आराम पाने के लिये 'होगोराह' और 'फेलसेल' नामक औषधियों को चौरूट के रूप में उपयोग करते थे। कहा

१. मैथिलीशरण गुप्त : 'व्यक्ति और काव्य' : डॉ. कमलाकांत पाठक - पृ. २९ से उद्धृत
२. सियारामशरण गुप्त : 'अनुज' लेख से सं. डॉ. नगेन्द्र पृ. ६
३. "साहित्यकार" - जून. १९५५, "सियारामशरण - निबंध" - महादेवी वर्मा - पृ. १७-१८

जाता है कि सन १९५१ के बाद से श्री॰ नाथूराम प्रेमी निरंतर ये औषधियाँ उन्हें बम्बई से भेजा करते थे, क्योंकि वे अन्यत्र उपलब्ध नहीं हो सकती थी।"[१] इन औषधियों के सेवन से उन्हें कुछ समय के लिये श्वांस की तकलीफ से आराम मिलता था तथा पीड़ा भी कम होती थी। किंतु कभी कभी श्वांस रोग का आक्रमण दीर्घकाल तक बना रहता था। इस असाध्य रोग के कारण कवि की साहित्य साधना में विक्षेप तो अवश्य पड़ा, किंतु कवि थोड़ा प्रकृतिस्थ होने पर लेखन कार्य में संलग्न हो जाया करता था। स्वयं कवि का कहना है -"अस्वस्थता के कारण साहित्यिक कार्य में बाधा पड़ी तो अवश्य है, परंतु उसीके कारण बहुत कुछ लिख भी सका, अन्यथा बहुत संभव है, वर्तमान राजनीतिक प्रवाह में पड़कर अन्य किसी क्षेत्र में खड़ा दिखाई देता।"[२] कभी कभी कवि को श्वांस का दौरा इतना भयंकर पड़ता था कि उनका शरीर निष्प्राण सा हो जाता। ऐसी दशा में श्वांस का उतार चढ़ाव इतना तीव्र हो जाता था कि उनको बोलने में भी कठिनाई होती थी। वे अपने कष्ट से औरों को परेशान नहीं करना चाहते थे। उनकी संकोची एवं संवेदनशील प्रकृति की ओर संकेत करते हुए श्री यशपाल जैन ने एक बड़े ही मार्मिक प्रसंग का उल्लेख किया है -"सियारामशरणजी दिल्ली गये थे। सब लोग एक जगह रुके थे। रात को बारह बजे उनको श्वांस कष्ट के कारण नींद नहीं आ रही थी। मेरी नींद खुल गयी। उनकी यह हालत देखकर मैंने पूछा -"क्यों आपको बहुत पीड़ा हो रही है?" साँस को प्रयत्नपूर्वक सुस्थिर करने की चेष्टा करते हुए वे बोले "नहीं"। इससे अधिक वह बोल नहीं सके, लेकिन मैंने अनुभव किया कि वह बड़ी देर तक अपने श्वांस को जबर्दस्ती इसलिये संभाले रहे कि मेरी नींद में व्याघात न पड़े।"[३]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि का जीवन अत्यंत कष्टमय रहा है। इन कठिन परिस्थितियों में कवि को जो वेदना मिली है उससे वे न तो विचलित हुए हैं और न ही उनकी आशा का तार टूटा है। उन्होंने इस

१॰ सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना : डॅा॰ दुर्गाशंकर मिश्र - पृ॰ १९

२॰ सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॅा॰ शिवप्रसाद मिश्र पृ॰ १७ से उद्धृत

३॰ 'प्रताप' : सियारामशरण अंक : श्री॰ यशपाल जैन - पृ॰ ९२

वेदना को ईश्वरीय वरदान समझकर स्वीकार किया है। श्वांस रोग के कारण शारीरिक रूप से भले ही वे दुर्बल हो गये हों, लेकिन वे कभी निष्क्रिय नहीं हुए। वे आजीवन अपने असाध्य रोग से जूझते हुए साहित्यसाधना में रत रहे।

साहित्य सृजन की प्रेरणा :

सियारामशरणजी के व्यक्तित्व पर पिता की सात्विक प्रवृत्ति एवं काव्य प्रतिभा का प्रभाव तो पड़ा ही, किंतु काव्य प्रेरणा उन्हें अपने अग्रज से ही मिली। 'सरस्वती' नामक पत्रिका में अपने अग्रज का नाम प्रकाशित देखकर कवि का मन बहुत प्रसन्न हुआ। उनके मन में अपने नाम को भी प्रकाशित देखने की लालसा जागृत हुई। कवि की कुछ प्रारंभिक कविताओं में अग्रज श्री. मैथिलीशरणजी ने संशोधन किया था और यह संशोधन उनके लिये वरदान सिध्द हुआ। उन्होंने इस विषय में कहा भी है, "प्रारंभ में ही उन हाथों का प्रसाद पाकर मेरी रचना कुछ की कुछ हो गयी। वह प्रसाद निरंतर मुझे प्राप्त है।"[१] उनके अग्रज सदैव उन्हें लिखने के लिये प्रेरित करते रहे, आवश्यकता पड़ने पर उसमें संशोधन करते रहे। इस प्रकार उनका कवि व्यक्तित्व अग्रज की स्नेह छाया में विकास पाता रहा। अग्रज व्दारा प्रेरित एवं संशोधित किये जाने पर भी उनकी कविता मौलिकता से परे नहीं है। प्रारंभिक काव्य रचना के समय भले ही उन्हें अपने अग्रज के सहयोग की अपेक्षा रही हो, किंतु उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, वह मौलिक ढंग पर ही लिखा है। यही कारण है कि साहित्यिक क्षेत्र में इन दोनों भाइयों का पृथक् व्यक्तित्व हमारे सम्मुख उजागर हो सका है।

चूंकि कवि वैश्य घराने में उत्पन्न हुए थे, अत: लक्ष्मी का आवाहन उनका प्रथम कर्तव्य था। अपने कर्तव्य के अनुरूप वे लक्ष्मी का आवाहन करने निकले, किंतु अनायास ही सरस्वती की ओर उन्मुख हो गये। स्वयं कवि ने इस विषय में लिखा है -"अपने शैशवकाल में एक बार लक्ष्मी को अनायास प्रसन्न करने की एक युक्ति मुझे मिली थी। लक्ष्मी का वह अटूट भण्डार किसी

---

१. झूठ-सच : 'बाल्यस्मृति'- लेख से - पृ. ५९

लता के छोटे टुकड़े में सुरक्षित था। बस उसी को खोज लेना चाहिए। लता वह ऐसी होनी चाहिए कि वृक्ष पर बायें से दायें गई हो। मुझे उसमें यह गुण बताया गया था कि जिस वस्तु के नीचे उसे रख दिया जायगा, कितना ही खर्च किये जाने पर वह चुकेगी नहीं। ....आसपास के बाग बगीचों में इस लक्ष्मी लता की खोज करने में निकला। कितने ही लता कुंज देख डाले। कितने ही छोटे बड़े वृक्षों के निकट खड़े होकर खुली हवा में साँस ली। घर के बाहर का भाग भी इतना सुंदर है, इसका अनुभव पहले पहल तभी हुआ। कुछ दोहे चौपाईयाँ कंठस्थ थीं, चलते चलते उन्हें गुनगुनाया। उनकी कविता हृदय के किसी अज्ञात प्रांत में मेरे बिना जाने झंकृत हो उठी। उस समय मुझे पता तक नहीं चला कि लक्ष्मी की ओर जाते जाते अचानक सरस्वती की ओर उन्मुख हो गया हूँ।"[१] "इस प्रकार सरस्वती की आराधना बचपन के खिलवाड़ के साथ आरंभ हुई थी और धीरे धीरे वह उनके जीवन की चरम साधना बन गयी।"[२] जिस दिन उन्होंने सर्वप्रथम कविता लिखने का विचार किया था, उस दिन वे पाठशाला न जाकर एक अँधेरे कमरे में बैठ गये थे। दोपहर के समय जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, तब कवि ने अँधेरे कमरे में बैठकर छः पंक्तियाँ लिख डालीं। इन पंक्तियों में उन्होंने सरस्वती और गणेश की वंदना की थी। किंतु उनमें इतना साहस नहीं था कि वे अपनी इस स्वरचित रचना को बड़ों के सम्मुख उपस्थित कर सके। इसी संकोच के कारण उन्होंने अपनी रचना प्रत्यक्ष में अग्रज को नहीं दिखाई। जब वे कमरे में न थे, तब उनकी अनुपस्थिति से लाभ उठाकर कवि अपनी रचना चुपचाप उनके कमरे में रख आया। उनका अनुमान था कि कविता निश्चय ही अग्रज के हाथ में पड़ जायगी। किंतु दुर्भाग्यवश वह कविता उनके हाथ न लगी। उनकी काव्य रचना में रुचि लेने की बात उनके द्वितीय अग्रज रामकिशोरजी के माध्यम से ही प्रकाश में आयी। कवि की सेवापरायणता से प्रसन्न होकर नन्ना ने कहा "ऐसा वैसा नहीं, सियारामशरण कवि भी है, और कविता लाने की आज्ञा

---

१. झूठ सच : बाल्यस्मृति लेख – पृ. ५२–५३
२. सियारामशरण गुप्त की काव्यसाधना – डॅा. दुर्गाशंकर मिश्र – पृ. २२

मिली।"[१] कालांतर में कवि के अग्रज ने उन्हें दोहे की मात्राएँ गिनने का अभ्यास कराया और उनकी रचनाओं को संशोधित कर उसके रूप में थोड़ा सा परिवर्तन भी किया। सियारामशरणजी के लिये अग्रज का आशीर्वाद बहुत शुभ साबित हुआ। प्रारंभ में कवि अपनी प्रत्येक कविता में अग्रज से संशोधन करवाते रहे, किंतु शीघ्र ही उन्होंने अपना मार्ग निर्धारित कर लिया। इस विषय में मैथिलीशरणजी ने लिखा है "यों तो अब भी उनकी रचनाएँ छपने से पहले एकाधिक बार मैं पढ़ लिया करता हूँ, परंतु मेरे किसी संशोधन अथवा परिवर्तन को मान लेने के लिये वे बाध्य नहीं है। यही उचित भी है।"[२] "कवि को केवल दोहे लिखने से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने जब यह जाना कि संस्कृत के वसंत-तिलका छंद में चौदह अक्षर होते हैं और मात्राएँ गिनने की आवश्यकता नहीं होती तो कवि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने चौदह अक्षरों का वसंत-तिलका छंद मुंशीजी के सम्मुख प्रस्तुत किया। मुंशीजी ने अक्षरों को ठीक क्रम से बिठाने का ढंग बताया। कवि के लिये घर की ओर से प्रबंध किया गया कि वे रोकड़ बही का काम सीखे।"[३] चूंकि कवि बाल्यकाल से ही काव्य रचना में अत्यधिक रुचि रखते थे, अतः उनका काव्य प्रतिभा से युक्त सरस मन भला रोकड़ बही जैसे निरस काम में कैसे रमता ? उन्हें सतत कविता गुनगुनाने की आदत थी। एक दिन जब मुंशीजी ने उन्हें जोर से कविता पाठ करते हुए देखा तो डांटते हुए कहा :"जब देखो तब यही काम। जो बताया जाता है, वह क्यों नही करते। अब इस तरह पाया तो पिटोगे।"[४] किंतु उनका मन तो अबाध रूप से काव्य सृजन में संलग्न हो गया। उनके काव्यप्रेम को देखकर उनके परिवारजनों ने उन्हें रोकड बही तथा अन्य काम के लिये बाध्य करना उचित नहीं समझा। अग्रज के अतिरिक्त कवि को मुंशीजी से भी अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ था। वे जब भी कोई नई कविता

---

१. झूठ सच : बाल्यस्मृति लेख - पृ. ५८
२. सियारामशरण गुप्त : 'अनुज' लेख : सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ. ८
३. झूठ सच : मुंशीजी लेख से - पृ. ६८
४. झूठ सच : मुंशीजी लेख से - पृ. ६८

लिखते, तो सम्मति और संशोधन के लिये उनके पास पहुँच जाते। मुंशीजी कवि की अशुध्दियाँ ठीक किया करते थे। एक बार उन्होंने श्रीधर पाठक की एक अशुध्दि की नकल पर आपत्ति की थी -" नकल किसी की मत करो। पाठकजी के गुण तो तुम ला नहीं सकते, दुर्गुण ही दुर्गुण तुम्हारी रचनाओं में आ जाएँगे।"[1] दरअसल यह मुंशीजी की बातों का ही सुपरिणाम था जिसके कारण कवि की रचनाओं में अनुकरण प्रवृत्ति का सर्वत्र अभाव सा रहा है। "कहा जाता है कि मुंशीजी व्दारा संशोधित सियारामशरणजी की एक कविता को आचार्य महावीरप्रसाद व्दिवेदी ने मैथिलीशरणजी के नाम से प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की थी, किंतु कवि के अग्रज को यह बात अरुचिकर: प्रतीत हुई। अंततोगत्वा वह कविता 'वीर बालक' के नाम से 'गृहलक्ष्मी' में प्रकाशित हुई।"[2] कवि के लिये यह प्रथम प्रशंसा थी। बाद में वह कविता पूर्ण संशोधन के पश्चात 'सरस्वती' में प्रकाशन के लिये भेजी गई।

कवि बाल्यकाल से ही मुंशीजी से कहानी सुनते रहें थे। उन्होंने लिखा है -"बचपन में भी कहानी सुनने के लिये उन्हें कम नहीं घेरा था और इस वय में भी बच्चों को राह देकर इसके लिये सब के आगे ही जमकर बैठता था।"[3] बाल्यकाल से ही कहानी सुनने का जो संस्कार कवि मन पर पड़ा उससे उन्हें कहानी एवं उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली। इस प्रकार अग्रज श्री मैथिलीशरण गुप्त एवं अजमेरीजी से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर ही कवि काव्य जगत की ओर उन्मुख हुआ और अपनी साहित्य साधना को नयी दिशा की ओर अग्रसर करने में कामयाब हो सका। इन दो विभूतियों के अतिरिक्त राय आनंद कृष्ण भी समय समय पर अपने सत्परामर्शों से कवि को प्रोत्साहित करते रहे।

काव्य सृजन की दृष्टि से सियारामशरणजी रवीन्द्र, गाँधी और विनोबा से बहुत प्रभावित हुए हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है -"शीघ्र

---

१. झूठ सच : 'मुंशीजी' लेख से - पृ. ६९
२. सियारामशरण गुप्त की काव्यसाधना : डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र - पृ. २३
३. झूठ सच - 'मुंशीजी' लेख से - पृ. ७७

ही वे गुरुदेव की रचनाओं के संपर्क में आ गये और उनसे प्रभावित होकर उन्होंने अपना मार्ग निर्धारित कर लिया।"[1] स्पष्टत: कवि रवीन्द्र की काव्यकला से प्रभावित थे। वर्धायात्रा के दौरान सियारामशरणजी को गांधीजी के संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और वे शीघ्र ही गांधीजी की विचारधारा से प्रभावित हो गये। गांधीजी के समान ही गुप्तजी भी समन्वय भावना, सत्य और अहिंसा, करुणा, वेदना निग्रह, सहिष्णुता, स्वाभिमान आदि के समर्थक रहे हैं। उनकी कविताओं में गांधीदर्शन के इन सिध्दांतों को पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली हैं।

सियारामशरणजी ने बापू के विराट् व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही 'बापू' नामक काव्य की रचना की थी। वस्तुत: कवि की बापू में अपूर्व निष्ठा थी और इसी कारण जब उन्हें गांधीजी की हत्या का समाचार मिला तो वे शोक विव्हल हो उठे और राय आनंद कृष्ण के कथनानुसार "सियाराम-शरणजी की आँखो से आँसू की धारा बहने लगी और वे सहसा तखत पर लेट गये। उनके पेट में भयंकर पीड़ा होने लगी जिससे वे मछली की भाँति तड़पने लगे। जब बहुत प्रयत्न से उन्होंने अपने आपको संभाला तब प्राय: आठ बज चुके थे।"[2] जिस समय गांधीजी की हत्या हुई, उस समय वे अस्वस्थ थे, किंतु अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए वे अस्वस्थ अवस्था में भी इलाहाबाद गये और उन्होंने गांधीजी की भस्मी की अंतिमयात्रा शोकाकुल नयनों से देखी।

"राष्ट्रपिता गांधीजी के उपरांत यदि किसी ने सियारामशरणजी को प्रभावित किया है तो वह हैं विनोबा भावे। आलोच्य कवि ने विनोबाजी के साथ भी पर्याप्त समय व्यतीत किया है। उनसे प्रेरणा पाकर ही कवि ने गीता का समश्लोकी हिन्दी अनुवाद किया था।"[3] तथा उनके पास उसकी भूमिका लिखने को भेजा था। 'गीता संवाद' के प्रथम संस्करण के लिये बहुत कुछ आवश्यक सुझाव भी उन्हें विनोबाजी से प्राप्त हुए थे, जिन्हें कवि ने

---

१. सियारामशरणजी गुप्त : 'अनुज' लेख से – सं. डॉ. नगेन्द्र – पृ. ८
२. प्रताप : सियारामशरण अंक : सन १९५३ ई. रायआनंद कृष्ण
३. सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना : डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र – पृ. २४

स्वीकार किया था। सियारामशरणजी व्दारा किया गया 'स्थितप्रज्ञ' नामक अनुवाद विनोबाजी की रामधुन प्रोग्राम में स्थान प्राप्त कर चुका है। इसी प्रकार विनोबाजी की प्रेरणा से कवि ने 'ईशावास्य' का पद्यानुवाद किया और प्रात:कालीन प्रार्थना में इस पद्यानुवाद का प्रयोग भी होता था।

राजनीति के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता की लड़ाई में जूझने वाले यशस्वी जनसेवी श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के शहीद होने पर भी कवि का भावप्रवण ह्रदय विचलित हो उठा था। उनकी 'आत्मोत्सर्ग' नाम की कृति गणेशशंकर विद्यार्थीजी के बलिदान पर ही आधारित है।

उपलब्धि और प्रसिध्दि :

सियारामशरणजी स्वांत:सुखाय के लिये ही रचना करते थे अत: प्रसिध्दि की ओर उनका विशेष लक्ष्य नहीं था। वे अपनी कविता को चाहते थे, दूसरे के चाहने न चाहने से उन्हें कोई सरोकार न था। स्वभाव से स्वाभिमानी होने के कारण अपनी रचनाओं के प्रकाशन के लिये परमुखापेक्षी नहीं रहे। उनका मानना था कि उनका कार्य साहित्य सृजन का है। छापना या पसंद करना तो सम्पादक और पाठक की रुचि पर निर्भर करता है। अत: साहित्य जगत से उपेक्षित होने पर भी वे विचलित नहीं हुए और आजीवन साहित्य साधना में रत रहे।

सन् १९१२-१३ में सियारामशरणजी की प्रारंभिक कविताओं का प्रकाशन 'प्रभा', 'माधुरी,' 'सरस्वती,' 'अवन्तिका,' 'प्रताप' आदि पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। उनकी तत्कालीन काव्य भावना के दो प्रमुख पक्ष थे "प्रथमत: वे रचनाएँ हैं, जिन्हें देश गौरव की चर्चा के रूप में प्रशस्तिगान कहा जा सकता है और दूसरी वे हैं, जिनमें देश की तत्कालीन अवस्था के चित्रण व्दारा जनता में जागृति की भावना उत्पन्न करने का प्रयास परिलक्षित होता है। ये भावनाएँ फुटकर रचनाओं के रूप में 'हमारा देश' [सन् १९१३], 'हमारा -हास' [सन १९१३] 'समय' [सन् १९१४] आदि कविताओं में व्यक्त हुई। सरस्वती में प्रकाशित 'वीर बालक' कविता [सन् १९१३] में राणा प्रताप के शौर्य एवं पराक्रम की कथा कही गयी है।"[१]

---

१. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र - पृ. ७५

सियारामशरणजी ने राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के निमित्त रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ कविताओं का अनुवाद किया जैसे 'कर्तव्य' [सन् १९१४] कवि की राष्ट्रीय विचारधारा तथा देशप्रेम को व्यक्त करनेवाली फुटकर रचनाएँ है - 'श्री राघव विलाप' [सन् १९१३] 'चित्र परिचय जननी' [सन् १९१३] तथा 'तिलक-वियोग' [सन् १९२०] इसी समय सन् १९१४ में उनका 'मौर्य-विजय' नामक खण्डकाव्य प्रकाशित हुआ, जो उनकी राष्ट्रीय भावना को ही अभिव्यक्त करता है। सन् १९१७ में 'अनाथ' काव्य का प्रकाशन हुआ, जिसमें कवि ने शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात किया है। उनका तृतीय काव्य संग्रह 'दूर्वादल' के नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसमें कवि की सन् १९१५ से लेकर सन् १९२४ तक की रचनाएँ संकलित हैं। इस संग्रह में कुल मिलाकर पैंतीस रचनाएँ संकलित हैं। सन् १९२५ में उनका एक और काव्य संकलन 'विषाद' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें कवि की पंद्रह विषादमयी रचनाएँ संकलित हैं। ये कविताएँ पत्नी के असामयिक निधन के पश्चात् लिखी गई हैं। 'आर्द्रा' का प्रकाशन सन् १९२७ में हुआ जिसमें 'हूक', 'प्रणयोन्मुखी', 'डाकू', 'नृशंस', 'एक फूल की चाह,' 'अग्निपरीक्षा' 'चोर', 'डाक्टर', 'अबोध', 'वंचित,' 'खादी की चादर', 'अब न करूंगी ऐसा' तथा 'बंदी' शीर्षक कविताएँ मिलाकर तेरह कविताएँ संकलित हैं। इस संकलन में उनकी सन् १९२५ से सन् १९२७ तक की रचनाओं का संकलन किया गया है। सन् १९२९ के अप्रैल माह की 'प्रभा' पत्रिका में उनका 'कृष्णा' नामक गीतिनाट्य छपा था। यह गीतिनाट्य मई जून तक बराबर निकलता रहा। सन् १९३१ में 'आत्मोत्सर्ग' खण्डकाव्य प्रकाशित हुआ, जो अमरशहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान के अवसर पर लिखा गया था। इसके तीन वर्ष पश्चात् अर्थात सन १९३० में 'पाथेय' शीर्षक काव्य संकलन प्रकाशित हुआ, जिसमें सन् १९२८ से लेकर १९३३ तक की रचनाएँ संकलित की गई हैं। इसी बीच सन् १९३५ के अप्रैल माह की 'सुधा' में गुप्तजी का 'कविता का नामकरण' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ। 'मृण्मयी' काव्य संकलन सन् १९३६ में प्रकाशित हुआ, जिसमें ग्यारह स्फुट रचनाएँ संकलित हैं। सन् १९३८ में 'बापू' शीर्षक गीतिकाव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें कवि ने 'बापू' को चरित नायक के रूप में चित्रित कर

गांधीदर्शन की सुंदर अभिव्यक्ति की है। सन् १९४० में उनका 'उन्मुक्त' काव्य नाटक प्रकाशित हुआ। इसमें गांधीजी की अहिंसा भावना को पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है। सन् १९४२ में 'दैनिकी' का प्रकाशन हुआ, जिसमें कवि की साठ स्फुट रचनाएँ संकलित हुई हैं। यह कृति सन् १९४२ के विश्वव्यापी युद्ध जन्य परिस्थितियों के परिवेश में लिखी गयीं हैं। 'नोआखली' में का प्रकाशन समय सन् १९४६ है जिसमें नोआखली में हुए साम्प्रदायिक विद्वेष से संबंधित ग्यारह काव्य कृतियाँ संगृहित हैं। इसी वर्ष उनका 'नकुल' खण्डकाव्य भी प्रकाशित हुआ। १९४७ में स्वाधीनता समारोह के अवसरपर 'जयहिन्द' का प्रकाशन हुआ। जनवरी सन् १९५४ में 'अवन्तिका' में 'छायावाद' पर उनका एक परिसंवाद छपा था, जिसमें कवि ने रवीन्द्रनाथ टैगोर को छायावाद का प्रथम प्रवर्तक माना है। 'कवि श्री' सियारामशरण का प्रकाशन १९५५ में हुआ। दिसम्बर सन् १९५७ के 'आजकल' में उनका एक लेख छपा था, जो उनके उपन्यास 'नारी' पर आधारित था। सन् १९५९ में उनके 'अमृतपुत्र' काव्य का प्रकाशन हुआ। मई सन् १९६१ के 'आजकल' में उनकी ख्यातनाम रचना 'गुरुदेव' प्रकाशित हुई थी, जो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जन्मशती के अवसर पर लिखी गयी थी। सन् १९६१ के ही दिसम्बर मास में 'बापू से लेनदेन' नामक एक संस्मरण निकला था। उस संस्मरण से यह स्पष्ट होता है कि सियारामशरणजी गांधीजी के सन्निकट थे। सन् १९६३ में उनका 'गोपिका' शीर्षक काव्य नाटक प्रकाशित हुआ। सन् १९६३ के 'आजकल' के मार्च माह के अंक में उनकी 'ऊँचा है भारत का भाल' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई थी जो चीन के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर लिखी गयी थी। इन्हीं दिनों सन् १९६३ में उनकी 'जयगोपाल' शीर्षक कविता 'गांधीमार्ग' के जुलाई माह के अंक में प्रकाशित हुई थी। सन् १९६८ में 'सुनंदा' नामक काव्य का प्रकाशन हुआ। इन काव्य कृतियों के अतिरिक्त उन्होंने कुछ कृतियों का हिन्दी अनुवाद भी किया है - जिनके नाम हैं 'गीता संवाद,' 'हमारी प्रार्थना' और 'बुद्ध वचन'। पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी अधिकांश प्रारंभिक रचनाएँ तो उनके काव्य संग्रहों में संकलित हो ही चुकी हैं, किंतु उनकी अंतिम दिनों की रचनाएँ अभी भी पत्रिकाओं से ही उपलब्ध हो सकती हैं, उनका संकलन नहीं हो सका है। इस प्रकार कुल मिलाकर सियारामशरणजी

ने अठारह काव्य कृतियों का निर्माण किया है। उन्होंने काव्य सृजन के साथ साथ साहित्य की अन्य विधाओं पर भी अपनी लेखनी चलायी है एवं साहित्य के अन्य सभी अंग-उपांगों को भी समुन्नत करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सामान्यत: लोक स्वीकृति की आकांक्षा प्रत्येक कवि-लेखक को होती है। लोक स्वीकृति से वह एक प्रकार का संतोष अनुभव करता है। कवि अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति और स्वीकृति व्दारा ही जीवन के अन्य क्षेत्रों में अभाव पूर्ति का अनुभव करता है। परंतु कविवर सियारामशरणजी को कम से कम अपने जीवनकाल में लोक स्वीकृति का यह सुख प्राप्त नहीं हो सका। जहाँ तक प्रसिध्दि का सवाल है, गुप्तजी की कृतियों का उनके जीवनकाल में समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया। डॉ. नगेन्द्र ने इस विषय में लिखा भी है - "उनके तप:पूत काव्य जीवन का उचित मूल्यांकन अभी नहीं हुआ।"[१] वे अपनी कृतियों को सोद्देश्य मानते थे और हिन्दी के आलोचकों की इस प्रवृत्ति से भलीभाँति परिचित थे। हिन्दी के आलोचक सोद्देश्यता को स्वीकार नहीं करते। "श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने कवि की अलोक प्रियता का कारण उनकी कविता की सोद्देश्यता को ही माना है तथा कवि का मधुर स्वर से कवि संमेलनों में अपनी कविताओं को कहने में असमर्थ होना है। वे न तो श्रृंगारिक कविता लिखने के अभ्यस्त थे और न ही स्वर के माधुर्य के साथ कविता कह ही सकते थे। आज के कर्ण रसिकों को रिझाना उनके काव्य का उद्देश्य नही था।"[२] स्पष्ट है कि सियारामशरणजी की साहित्य साधना का उचित समादर उनके जीवनकाल में नहीं हुआ, किंतु आज उनकी साहित्यिक महानता को उपेक्षा की दृष्टि से देखना असंभव है। डॉ. नगेन्द्र ने उनकी साहित्यिक महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है - "उनका साहित्य गुण और परिमाण दोनों की दृष्टि से अत्यंत वरेण्य है।"[3]

---

१. सियारामशरण गुप्त : 'निवेदन' से : सं. डॉ. नगेन्द्र
२. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र -पृ. १९
३. सियारामशरण गुप्त : 'निवेदन' से : सं. डॉ. नगेन्द्र

साहित्यिक आलोचनाओं की चर्चा करते हुए कवि ने एक पत्र में लिखा है -"मेरी रचनाओं ने कुछ सज्जनों का हृदय छुआ है, ऐसी मेरी धारणा हुई। भेंट होने पर कुछ बंधुओं ने ऐसा व्यवहार किया, मानों वे मुझे पहचानते हैं। मैं यह नहीं समझ सका कि यह शिष्टचार भी हो सकता है, क्योंकि मैंने देखा ये बंधु सर्वजनिक रूप में बोलते हुए मेरे संबंध में कुछ नहीं जानते। कम से कम इतना तो है ही कि इस जानने का महत्त्व उनके निकट कुछ नहीं है। उत्सुक होकर मैंने साहित्यिक आलोचनाओं की ओर देखा। कम से कम सौ निबंध मैंने इस प्रकार के देखे होंगे, जिनमें परीक्षक ने वह स्थान भी मेरी रचनाओं को नहीं दिया था, जहाँ किसी अच्छे से अच्छे पात्र में इधर उधर कूड़ा करकट समेट कर रख दिया जाता है।"[1] उपर्युक्त कथन से कवि के प्रति हिन्दी साहित्य जगत का उपेक्षा भाव प्रकट होता है। जिसके लिये कवि को मानसिक वेदना झेलनी पड़ी। कवि इस तथ्य से भलीभाँति परिचित था कि हिन्दी के पाठकों ने उसे निकट से देखा-परखा नहीं है। उसके साहित्य का गहराई से अध्ययन किये बिना उसके प्रति उदासीनता प्रकट करना या भ्रामक धारणा बनाना कवि को सहय नहीं था। गद्य रचना की ओर उन्मुख होने की पृष्ठभूमि में मूल भावना यही थी। किंतु यहाँ भी कवि को निराश होना पड़ा। "किंतु पहले जैसा अनुभव इस क्षेत्र में मुझे फिर होता है। सुंदर, श्रेष्ठ; इधर उधर मैंने कम नहीं सुना। परंतु हिन्दी के पारखियों की दृष्टि से देखने पर समझमें आया कि साहित्य के मंदिर में प्रवेश का अधिकार अभी मुझे नहीं है, वहाँ के लिये मैं अछूत हूँ।"[2] अपने साहित्यफल के लिये हिन्दी कुटुम्ब स्वीकृति का ऊपरी जल न पाकर कवि ने अपने मूल को उस अतल की ओर उन्मुख कर दिया था, जहाँ अक्षय प्रवाह था। उनकी अलोकप्रियता का एक और कारण यह भी था कि उनकी कृतियोंका अपेक्षित विज्ञापन भी नहीं होता था। पत्रपत्रिकाओं में उनकी कृतियों की चर्चा के इस प्रकार अस्वीकार किये जाने से कवि को दुःख होता था, किंतु वे निराश नहीं हुए -"यदि यह कहूँ कि इस तरह के अपने अस्वीकार से [विज्ञापन न

---

१. सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व औस कृतित्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र -पृ. १९ से उद्धृत
२. सियारामशरण गुप्त: व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. शिवप्रसाद मिश्र- पृ. २० से उद्धृत

दिये जाने से जो उपेक्षा हुई थी] मुझे खिन्नता नहीं होती तो मैं अपनी जड़ता ही प्रकट करूँगा, वह हुई है परंतु परिणाम में उससे अमंगल नहीं हुआ।"[1]

व्यक्तित्व, वेशभूषा, स्वभाव, खानपान एवं अभिरुचि :

व्यक्तित्व :

"जिन्होंने सियारामशरणजी को नजदीक से देखा था, उन्हें उनको पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। देखने में वे दुबले पतले थे। रंग गेहुआँ था। ऊपर से शरीर की सुघराई में भले ही रूखापन हो पर अंदर से वे निर्मल, स्वच्छ, स्नेहयुक्त, आर्द्र एवं अतिथि को बांहों में भरकर भेंटने को उत्सुक दिखाई पड़ते थे।"[2] श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में -"कुछ नाटा कद, कुछ दुर्बल शरीर, छोटे और सूखे से हाथपैर, लम्बे उलझे से रूखे बाल, लम्बाई लिये सूखा-सा मुख, सूखे होंठ, और विशेष तरल आँखें - यही व्यक्तित्व है सियारामशरणजी का। ग्रामीण भारत अपनी शताब्दियों पुरानी संस्कृति की धरोहर लेकर जैसे उसमें मूर्तिमान हो उठा हो। घुटनों से कुछ नीचे पहुँचने वाली धोती और मिर्जई।"[3] शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से कवि भले ही दुर्बल रहे हों, किंतु उनका व्यक्तित्व तो चिंतनशील एवं मननशील था। श्री हरगोविंदजी ने भी उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "दुबले पतले इतने कि कोई काबुली पंजाबी या तगड़ा सा बुंदेलखण्डी ही अँकवार में दबाले तो एक क्षण में सूरत बदल जाय, भले ही उसकी वह चपेट स्नेह की ही हो। किंतु निश्चयपूर्वक इससे उनके प्राणों पर आ बनेगी। लम्बाई पाँच-सवापाँच फुट के लगभग और इस पूरे शरीर का भार कठिनाई से सत्तर-पचहत्तर पौंड अर्थात पैंतीस-सैंतीस सेर के भीतर, किंतु मन अथाह और अतुल। रंग गेहुआँ, देह ऊपर से देखने में नारियल जैसी उभरी नसोंवाली रूखी और भीतर भीतर भी वे नारियल जैसे ही निर्मल, मृदुल और स्नेहसिक्त ऐसे कि पाकर छोड़ना कठिन।"[4] डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उनके

---

१. सियारामशरण गुप्त : श्री रायआनंदकृष्ण : सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ. ३१
२. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : डॉ. ललित शुक्ल - पृ. ४
३. 'साहित्यकार'- जून, १९५५ "सियारामशरणजी - निबंधसे"- पृ. १९-२०
४. प्रताप - सियारामशरण अंक - श्री हरगोविंद - पृ. ९७

व्यक्तित्व से प्रभावित होकर लिखा है -" उनका व्यक्तित्व स्वयं किसी मनोहर काव्य से कम आकर्षक नहीं था। अत्यंत सरल स्वभाव और अत्यंत मर्मभेदिनी तीक्ष्ण दृष्टि-प्रथमदर्शन में ये दो बातें ही दर्शक पर अपना प्रभाव डालती हैं। उनके समूचे व्यक्तित्व में कहीं बनावट या कृत्रिमता नहीं है। सहज सारल्य की तो वे प्रत्यक्ष प्रतिमूर्ति हैं।"[१] राय आनंद कृष्ण ने सियारामशरणजी के कवि स्वरूप को इस रूप में उद्घाटित किया है - "सियारामशरणजी का कवि जैसा स्वरूप मोटी खादी की धोती कुर्ते में और भी अधिक दीप्त हो उठता है। जन्मभर की साहित्य साधना और उच्च दार्शनिकता पूर्ण जीवन ने उनके मुख पर एक अलौकिक कांति ला दी है और वे प्रथम दर्शन में गांधीवादी संत ही जान पड़ते हैं।"[२]

<u>वेशभूषा</u> :

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'अनुज' शीर्षक लेख में वेशभूषा संबंधी विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है -"बचपन में हम लोग मोतियों के झुमके, जिनका बोझ संभालने के लिये मोतियों की ही दुहरी साँकले कानों पर चढ़ी रहती थीं, पहना करते थे। पैरों में चांदी के कड़े, तोड़े हाथों में सोने के कड़े, पहोंचियाँ और गले में गोपगुंज एवं कंठे आदि भी समय समय पर पहना करते थे। सिरों पर मंडील [कामदार कपड़े का साफा] भी बँधवाते थे। सियारामशरणजी भी इसके अपवाद न थे।"[3] समय परिवर्तन के साथ रहन-सहन और पहनावे में भी अंतर आया। बाल्यकाल में पारिवारिक परंपरा के अनुसार कवि को आभूषणों से भले ही लद जाना पड़ा हो, किंतु बड़े होने पर तो ग्रहशांति के लिये रत्न विशेष की अंगूठी पहनना भी उनके मनोनुकूल न रहा होगा।"[४] उनकी पोषाक सादगीपूर्ण थी। कम अर्जवाली खादी की धोती, आधी बाहों वाला सलूका, ऊपर से कुरता टोपी, यही उनकी पोषाक थी। खादी से प्रेम होते हुए भी कवि अपने हाथों से कतीबुनी खादी का इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। श्रीमती महादेवी वर्मा ने लिखा है -

---

१. सियारामशरण गुप्त : 'भैया' लेख : डॉ. हजारीप्रसाद व्दिवेदीजी - सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ. १८
२. सियारामशरण गुप्त : 'बापू सियारामशरणजी' लेख से - पृ. २८
३. सियारामशरण गुप्त : 'अनुज' लेख से - पृ. ५
४. सियारामशरण गुप्त : 'अनुज' लेख से - पृ. ५

"वे शुध्द खादीधारी हैं। वस्त्रों का वजन कहीं क्षीण शरीर से अधिक न हो जाय, इसी भय से मानों उन्होंने कम वस्त्रों की व्यवस्था की है। औरों की पाँच गज लम्बी और कम से कम बयालीस इंच चौड़ी धोती, इनके लिये तीन गजी छत्तीस इंची हो जाती है। अतः इनके चरणस्पर्श का अधिकार उसके लिये दुर्लभ ही रहता है। शहराती कुर्ते से ग्रामीण मिर्जई की अस्थायी संधि केवल बाहर जाते समय होती है और चप्पल तो असली चमरौधे की सहोदराएँ जान पड़ती हैं। इस वेशभूषा के साथ जब वे थैला और छड़ी लेकर आविर्भूत होते हैं तब उनके साहित्य के विद्यार्थियों के समक्ष समस्या उठ खड़ी होती है कि वे इन्हें लेखक माने या अपने मानस में इनके साहित्य से बनी कल्पनामूर्ति को। सत्य तो यह है कि यदि कोई इन्हें इनके साहित्य का स्रष्टा न स्वीकार करे तो इनके पास अपना दावा प्रमाणित करने के लिये बाहरी कोई प्रमाण नहीं।"[१] वे अपने गले में वैष्णवी प्रवृत्ति की परिचायक तुलसी की कण्ठी अवश्य धारण करते थे। संक्षेप में, कवि की वेशभूषा अत्यंत सादगीपूर्ण थी।

<u>स्वभाव</u> :

गुप्तजी स्वभाव से अत्यंत विनयशील, स्नेही एवं संवेदनशील व्यक्ति थे। उनके स्वभाव की सरलता की ओर संकेत करते हुए श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं -"मन में कोई ग्रंथि नहीं, कोई अहमन्यता का भाव नहीं। उनमें सरलता है किंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उनका व्यक्तित्व ऐसा गुड़ है, जिसे चींटें खा जायें। गुप्त वंश की यह परंपरा है कि सरलता बच्चों के ऐसी और खरापन सूरमाओं जैसा।"[२] गुप्तजी स्पष्टवक्ता थे। वे आगंतुकों से अत्यंत हार्दिकता के साथ मिलते थे। उन्होंने नवयुवकों को भी विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहित किया था। कवि के स्वभाव में उदारता, शील और सहृदयता का अपूर्व सामंजस्य था। वे आत्म प्रशंसा के पक्षपाती नहीं थे। अपनी अपेक्षा औरों की प्रशंसा करना व सुनना अधिक पसंद करते थे। सिध्दांतों के विषय में वे दुराग्रही नहीं थे। वे प्रायः उत्तेजित कम ही होते थे।

---

१. पथ के साथी : महादेवी वर्मा - पृ. ८९
२. "प्रताप" : सियारामशरण अंक : सन १९५२ ई. बालकृष्ण शर्मा के लेख से - पृ. ९

"वे दूसरे साहित्यिकों की कटु आलोचना कभी नहीं करते थे। अपने विश्वासों के प्रति किसी की अनास्था दिखाई जाने पर भी वे हँसते ही रहते थे। वे क्रोध तो बहुत ही कम करते थे।"[1]

वे स्वभाव से अत्यंत उदार एवं परदुःख कातर थे। उन्हें अपनी अपेक्षा दूसरों की सुख सुविधा का विशेष ध्यान रहता था। उनकी इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए श्री हरगोविंदजी ने एक संस्मरण में लिखा है -"सन् १९२१-२२ में वे प्रेस में काम करते करते थकावट और नींद से ऊँघने लगते तो कवि स्वयं अपने सुस्ताने का बहाना बना काम छोड़ उठ जाते थे, साथ ही मुझे भी लेटने सुस्ताने को कह जाते थे। कुछ देर में विश्राम करके जब मैं उठता तो प्रायः देखता कि बापू डेस्क के दूसरे किनारे बैठे प्रूफ देख रहे थे। मैं झेंपकर रह जाता।"[2] बम्बई की अपनी रोग शैया से कवि ने अपने भतीजे श्रीनिवास को जन्मतिथि पर आशीर्वाद भेजते हुए लिखा था -"मैं अनुभव करता हूँ, मुझे जो भयंकर पीड़ा होती है, उससे भी पीड़ितजन यहाँ हैं, उनकी पीड़ा की अनुभूति निज की पीड़ा का शमन करती है।"[3] उनके इस कथन से उनकी परदुःख कातरता का भाव ही ध्वनित होता है।

सियारामशरणजी शिष्टाचार की सजीवमूर्ति थे। इसी शिष्टाचार के परिणामस्वरूप वे सबके दिल दिमाग पर छा जाते थे। अपने छोटे से छोटे अशिष्टतापूर्ण कार्य से वे दुःखी होते थे। डॉ. सुरेशचंद्र गुप्त को एक पत्र में उन्होंने अपने शिष्टाचार का परिचय देते हुए लिखा भी है :"यहाँ 'मैं' के स्थानपर मैं ने 'हम' लिखदिया है। बड़े बन बैठने की यह बात आप सहज ही पकड़ लेंगे और इसके लिये मुझे क्षमा भी करें।"[4] उनके शिष्टाचारका एक रोचक प्रसंग अंकित करते हुए डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने लिखा है -

---

१. प्रताप : सियारामशरण अंक : डॉ. मोतीचंद : पृ. ७२
२. 'त्रिपथगा,' 'पंकज' श्रध्दांजलि अंक - अगस्त १९६३ - पृ. ७३
३. सियारामशरण गुप्त : 'अनुज' लेख से : डॉ. नगेन्द्र - पृ. १०
४. 'रसवंती' - जुलाई सन् १९६३ ई.

"वे दिल्ली में डॉ. हजारीप्रसाद व्दिवेदी तथा अज्ञेयजी के साथ भ्रमण करते हुए एक दम्पति से [जो अपने बच्चे को गाड़ी में ठेलते हुए जा रहे थे] मार्ग पूछ बैठे। आचार्य हजारीप्रसाद व्दिवेदी ने इसे [विनोद में ही] शिष्टाचार के विरूध्द बताया। कवि को इससे वेदना हुई। अज्ञेयजीने जब उनके अनुकूल निर्णय दिया तब जाकर चित्त से कलंक दूर हुई।"[१] इसी प्रकार डॉ. सावित्री सिन्हा के कथनानुसार -"एक बार वे अपने किसी मित्र की गाडी से विश्वविद्यालय आये हुए थे। ड्राईवर को गाड़ी लौटाकर ले जाना था। बापू गाड़ी से उतरे, हाथ जोड़कर ड्राईवर से बोले, 'अच्छा' नमस्ते ड्राईवरजी, आपको बहुत कष्ट हुआ। सलामी देने का आदी ड्राईवर आश्चर्य चकित हो उनकी ओर देखता ही रह गया।"[२] चूंकि वे गांधीदर्शन से प्रभावित थे अत: वे समाज के निम्नस्तरीय व्यक्ति में भी नारायणत्व का दर्शन करते थे। उनके व्यवहार में ऊँचनीच के भेदभाव के लिये गुंजाईश नही थी।

वे जहाँ स्वभाव से मृद्ध, आडम्बरशून्य, आस्तिक एवं विनम्र थे, वहीं वे स्पष्टवादी भी थे। श्री नवीनजी उनकी स्पष्टवादिता की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित करते हुए लिखते है -"जैसे को वैसा कह देने में रंचमात्र भी संकोच नही करते थे।"[3] संक्षेप में डॉ. ललित शुक्ल के कथनानुसार "जीवन में थकना उन्होंने कभी नहीं जाना। नियम संयम तो उनके जीवनाधार थे, संतोष कवि के व्यक्तित्व का श्रृंगार था और सादगी विभूति। करूणा, दया, क्षमा, ममता आदि भावों से जीवन की हर दृश्यावली पूर्ण है।"[४]

<u>खानपान</u> :

वस्त्रों के समान सियारामशरणजी का खानपान भी अत्यंत ही सादगीपूर्ण था। प्रात:काल अचार के साथ बासी पूरी का नाश्ता करते थे

---

१. सियारामशरण गुप्त : 'भैया' लेख से : सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ.१९
२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : १४ अप्रैल सन् १९६३ - डॉ. सावित्री सिन्हा
३. प्रताप : सियारामशरण अंक : सन् १९५२ ई. ले. नवीनजी
४. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : डॉ. ललित शुक्ल - पृ. १९

और फिर दो एक कप चाय लेना उनका नित्यक्रम था। "वे रोटी, दाल शाक, सिंवई, चावल आदि अधिक पसंद करते थे। धूम्रपान करते थे, किंतु नाक के व्दारा। एक छोटी सी डिबिया में दवा डालकर सुलगाया और बास लिया।"[1] इससे उन्हें श्वास रोग में आराम मिलता था।

अभिरुचि :

सियारामशरणजी प्रात: छ: बजे उठकर हाथमुँह धोने के उपरांत कुछ देर टहलते थे। इसी बीच अतिथियों का कुशल समाचार भी पूछ लेते थे। वे नियमित अखबार पढ़ते थे और किसी विशेष खबर को लेकर उनकी अपने अग्रज से बहस भी हो जाया करती थी। किंतु इस बहस के दौरान भी उन्हें अनुज होने के नाते मर्यादा का पूरा ध्यान रहता था। अखबारों के अध्ययन के उपरांत वे पत्रोत्तर देने में व्यस्त हो जाया करते थे। जब वे पढ़ते पढ़ते थक जाते थे तब ताश खेलते थे। बड़ों की अपेक्षा उन्हें बच्चों के सान्निध्य में रहना अधिक रुचिकर था। अतिथियों का स्वागत एवं उनकी सेवा शुश्रूषा करना भी उनके दैनन्दिन कार्यों का ही एक प्रमुख अंग था। श्वांस रोग के कारण यद्यपि उन्हें बोलने में तकलीफ होती थी, किंतु जहाँ तक तर्क वितर्क या वाद विवाद की स्थिति होती तो वे मौन न रहकर हाँफते हुए भी अपने मत को जोर जोर से बोलकर प्रकट करते थे।

उपसंहार :

गुप्तजी के जीवन पर दृष्टिपात करने से सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि वे आजीवन रोगग्रस्त रहे। सन् १९६३ के मार्च महिने में वे अस्वस्थ होते हुए भी दिल्ली गये थे, जहाँ उनकी स्थिति अधिक गंभीर हो गयी थी तथा उन्हें करोलबाग स्थित गंगाराम अस्पताल में उपचार के लिये रखा गया था। किंतु कवि के अंतिम दिन नज़दीक आ गये थे। जीवन के इन अंतिम क्षणों में असहय पीड़ा को झेलते हुए भी कवि ने अपना मानसिक संतुलन बनाये रखा। कवि की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। अस्पताल में

---

१. सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन : डॉ. ललित शुक्ल – पृ. ६

२७ मार्च को उन्होंने डॉ॰ नगेन्द्र को याद किया। 'श्री राम' और 'दद्दा' भी वे कठिनता से बोल पाते थे। किंतु डॉ. सावित्री सिन्हा के कथनानुसार -"डॉ. अंतिम क्षण तक आशावान थे।"[१] अंततोगत्वा २९ मार्च १९६३ को प्रात: सियारामशरणजी ने इस संसार से हमेशा के लिये विदा ली। उनको श्रध्दांजली अर्पित करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने कहा -"कवि सियारामशरण गुप्त की मृत्यु का आघात अनेक दृष्टियों से असहय है। हिन्दी की एक अपूर्व प्रतिभा विलीन हो गई। गांधी दर्शन का निश्छल व्याख्याता आज के युध्दभीत संसार को छोड गया और हम स्वजनों के बापू हमसे विलग हो गये।"[२] अनेक विव्दानों ने अपनी भाव विगलित श्रध्दांजलियाँ उस साहित्य सृष्टा को समर्पित कीं। पत्रपत्रिकाओं में संवेदनाएँ प्रकट की गयी।

इस प्रकार सियारामशरणजी के जीवन पर दृष्टिपात करने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि सरस्वती की उपासना ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य था और इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त वे आजीवन साहित्य साधना करते रहे। चूंकि वे स्वांत: सुखाय ही साहित्य सृजन करते थे, अत: उन्हें इस बात से सरोकार नहीं था कि उनकी कृतियों को लोकप्रियता मिलती है या नहीं। उनकी श्रेष्ठ कृतियों के कारण उन्हें जो कुछ सम्मान एवं सुख मिला उसे तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया, किंतु साहित्य जगत से उपेक्षित रहकर भी वे निराश नहीं हुए। यह विशेष उल्लेखनीय है कि कवि की मृत्यु के पश्चात् उन्हें हिन्दी साहित्य जगत में अपूर्व सम्मान प्राप्त हुआ और आज भी है।

१॰ सियारामशरण गुप्त : 'अंतिम दर्शन' लेख से : डॉ. सावित्री सिन्हा सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ. ५२

२. "त्रिपथगा": श्रध्दांजली अंक, अगस्त १९६३ : डॉ. नगेन्द्र - पृ. ८०